आरक्षणः एक राजनीतिक औजार

डॉ. मनोज कुमार सिंह

आरक्षण की व्यवस्था सदियों से दमित और शोषित वर्गो को अवसर प्रदान करने और उन्हें उच्च वर्ग के समकक्ष लाने के लिए अस्थायी तौर पर की गयी थी। किन्तु आजादी के 60 साल पूरे हो जाने के बावजूद दमन और शोषण की स्थिति बरकरार हैं। और आरक्षण के बाद भी इन वर्गो के लोगो का आर्थिक, सामाजिक उत्थान पूरी तरह से नही हो सका है। आरक्षण व्यवस्था राजनीतिक लाभ का औजार बनती जा रही है। भारत जैसे देश में साधनो और पैसे की कमी के कारण सरकारी क्षेत्र में रोजगार के अवसर न के बराबर रह गये है और जो हैं वो अवसर प्रदान करने का माध्यम कम, प्रचार का माध्यम अधिक बनते जा रहे है। मेरे विचार से ऐसी स्थिति में जल्द से जल्द आरक्षण की बैसाखियों का सहारा लेने की प्रवृत्ति से मुक्ति पाना ही अनुसूचित जातियों या पिछड़ी जातियों के हित में प्रतीत होता है। आरक्षण के औचित्य को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता और न ही मैं कर रहा हूँ, पर आरक्षण दमित, शोषित वर्ग का वास्तविक हित करने की बजाय राजनीति का औजार बन जाये तो उसकी उपयोगिता पर प्रश्नचिन्ह लगने लगता है। मेरे विचार से आरक्षण चुनौती झेलने और संघर्ष करने की प्रवृत्तियों को अवरूद्ध करता है। आरक्षण एक प्रकार की विशेष अनुकंपा या कृपा प्राप्त करते रहने की प्रवृत्ति को विकसित करता है। जबकि आज सबसे बड़ी आवश्यकता इन वर्गों में आर्थिक सक्षमता, योग्यता, आत्म सम्मान और दृढ़ इच्छाशक्ति उत्पन्न करने की है। ओर देखा जाये तो मनोवैज्ञानिक दृष्टि से आरक्षण इन श्रेष्ठ गुणों के विकास में बाधा बन जाता है।

जो अनुसूचित वर्ग पहले उच्च जातियों वाले सामंतो की दया पर या क पा पर निर्भर था, आज वह राजनीतिक दलालों (राजनेताओं) की दया और क पा का आकांक्षी बनता जा रहा है और यह बात सबको पता है कि दया और कृपा पर निर्भर रहने वाला व्यक्ति जीवन के वास्तविक संघर्ष में अपनी प्रतिभा को प्रदर्शित करने से घबराता है, सकुचाता है या डर जाता है। अतः अनुसूचित वर्ग या पिछड़े वर्ग के लोगों को आरक्षण जैसी बैसाखियों से जितनी जल्दी हो सके, मुक्ति पाने का प्रयत्न अपनी ओर से ही करना चाहिए तभी वे दूसरों से कमजोर होने की हीन भावना से मुक्त होकर चुनौती को सीने पर झेलने का साहस कर सकेगें। इन वर्गों में भी राजनीतिक स्तर पर एक विशेष वर्ग बन गया है, जो इन वर्गो के ही कुछ जातियों से आगे या सम्पन्न हो गया है। अतः आरक्षण देना ही है तो अनुसूचित वर्ग में भी अब अन्य पिछड़ी हुई जातियों के लिये आरक्षण का प्रश्न होना चाहिए। राजनीतिक आरक्षण और आर्थिक आरक्षण दोनों को अलग–अलग करना होगा तभी हम समाज के सभी वर्गो के साथ न्याय कर पायेगें और उन्हें जोड़ते हुए आगे बढ़ पायेगें। आरक्षण की समस्या बहुत जटिल बन गयी है। जैसे–किसे विशेष सुविधा मिलनी चाहिए? उस सुविधा का प्रदान करने का आधार क्या होना चाहिए? पिछड़ी जाति का होना एक बात है पर क्या ऊँची जातियों मे आर्थिक पिछड़ापन नहीं है? और सामाजिक रूप से पिछड़े लोग है? जरूरी नहीं कि आर्थिक रूप से भी पिछडे हुए हों और यह भी जरूरी नहीं कि सामाजिक रूप से अग्रणी जातियॉ आर्थिक रूप से संपन्न ही होा। आजादी के बाद कुछ पिछड़ी जातियों ने आर्थिक रूप से काफी उन्नति की है और उनमें अधिकांशतः शैक्षिक स्तर पर भी आगे बढ़े है, दूसरी तरह ऊॅची जातियो के बड़े हिस्से मे बेरोजगारी और नौकरी के क्षेत्र में कड़ी प्रतियोगिता बढ़ी हैं इस समस्या को राजनीतिक अवसरवाद ने और अधिक कठिन बना दिया हैं। पिछड़े वर्ग के पक्ष में लम्बे–चौड़े वादे करना, वोट प्राप्त करने का तरीका हो गया हैं। आज कोई नही कह सकता कि इस समस्या का हल कैसे होगा? क्या आरक्षण वर्ग के आधार पर किया जाना चाहिए? यदि हॉ तो जाति और वर्ग का आधार क्या होगा? आर्थिक स्तर पर ऑकलन करना भी बहुत कठिन होगा। जब एक ही जाति में चाहे वो अनुसूचित जातियां हो या उच्च जातियां दोनो में धनी और निर्धन लोग हैं तो हम कैसे कह सकते हैं कि फलां जाति आर्थिक रूप से पिछड़ी हुई हैं। केन्द्र और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तय 50 प्रतिशत की सीमा से आगे जाकर आरक्षण बढ़ाना आरक्षण प्रावधानों का सबसे बड़ा दुरूपयोग है। केन्द्र और सर्वोच्च न्यायालय की तय सीमा के बावजूद तमिलनाडू सरकार 69 प्रतिशत आरक्षण बरकरार रखने में सहायता के लिए संविधान में संशोधन करना तथा सरकारी नौकरियों तथा शैक्षिक संस्थाओं में धर्म के आधार पर मुस्लिमों एवं ईसाइयों को अलग से आरक्षण देने के लिए 13 सितम्बर 2007 को एक अध्यादेश जारी करना समाज के योग्य प्रत्याशियों के लिए खाई खोदने के समान है।[1ढ] जुलाई 1994 में कर्नाटक में दो अगड़ी जातियों (1) वोक्कालिंगा और (2) लिंगायत को अन्य पिछड़ी जातियों की सूची में शामिल किया जाना इसके दुरूपयोग का स्पष्ट उदाहरण है।[2ढ] इसी प्रकार अभी हाल में ही उच्च शिक्षा में अन्य पिछड़े वर्गो को 27 प्रतिशत आरक्षण देने की सरकारी कृत से आम व्यक्तियों के साथ–साथ उद्योग जगत में भी भारी नाराजगी व्याप्त हैं। फिक्की (FICCI) की शिक्षा समिति की चेयरमैन शोभना मिश्रा के अनुसार अन्य पिछड़े वर्ग को उच्च शिक्षा में आरक्षण देने के स्थान पर सरकार को चाहिए कि वह ऐसी सुविधायें उन्हें उपलब्ध कराये जिससे वे स्वयं अपने बूते पर प्रतियोगितात्मक परीक्षाओं में सामान्य वर्ग के प्रतियोगी को पीछे छोड़कर आगे निकल जायें। दरअसल उद्योग जगत को सबसे बड़ा डर इस बात का है कि उच्च शिक्षा संस्थानों में आरक्षण के आधार पर ज्यादा छात्रों को प्रवेश मिलने से वहां माहौल और शिक्षा के स्तर पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। अब भी इन संस्थानों में अनुसूचित जाति व जनजाति के छात्रों को 22. 5 प्रतिशत आरक्षण मिला हुआ है। अन्य पिछड़े वर्ग यानी ओ.

अतिथि प्रवक्ता (राज.विज्ञान), शासकीय माधव महाविद्यालय, चन्देरी, जिला अशोकनगर (म.प्र.)

बी.सी. के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण हो जाने से इन संस्थानों मे एक तरह से अयोग्य छात्रों की भरमार हो जायेगी। बाद में यही छात्र विभिन्न औद्योगिक प्रतिष्ठानों में नौकरी के लिए दरवाजा खटखटायेंगे इन अयोग्य अभ्यर्थियों को नौकरी देने से न केवल उत्पादकता में कमी आयेंगी बल्कि देश के विकास की गति में भी गिरावट होगी। आरक्षण से संबंधित किसी भी प्रश्न पर विचार करने से पहले एक प्रश्न उठता है वह है आरक्षण किसके लिए और क्यों? इस प्रश्न का उत्तर यदि खोजे तो कई अन्य प्रश्न उठ खड़े होते हैं। संविधान में आरक्षण की जो व्यवस्था की गयी थी वह कुछ समय के लिए थी। आज 60 वर्ष बाद भी आरक्षण का दायरा घटाने की बजाय बढ़ाने की जरूरत क्यों पड़ रही है ? क्या इसका सीधा अर्थ यह नही कि संविधान के सामाजिक न्याय संबंधी निर्देशों का पालन करवाने में हमारी संसद पूरी तरह विफल रही हैं।

जहॉ तक आरक्षण का लाभ सही व्यक्ति को मिलने का प्रश्न है यह शुरूआती वर्षो में भी कुछ विशेष लोगो तक सीमित था और आज भी स्थिति यही है। आज की स्थिति यह है कि हम प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर पिछड़े तथा अन्य दलित वर्गो के लिए कुछ कर नही पाये है और उन्हें उच्च शिक्षा में आरक्षण देकर आसन्न विधान सभाओं तथा लोकसभा चुनावों हेतु वोट बैंक तैयार कर रहें हैं। स्कूल कॉलेज स्तर की शिक्षा में भी हम इस वर्ग को आगे नही कर पा रहे हैं। यही कारण हैं कि केवल दिल्ली विश्वविद्यालय में ही आदिवासियों तथा दलितों के लिए निर्धारित ग्यारह सौ सीटे प्रतिवर्ष रिक्त रह जाती है। सरकार को इन रिक्तियों को भरने की दिशा में प्रयास करना चाहिए जबकि वह रिक्तियों की संख्या को और बढ़ाने की दिशा में प्रयास कर रही है। यदि हम नेशनल सैंपल सर्वे आर्गेनाइजेशन द्वारा गांव के स्कूलो में छात्रो की उपस्थिति पर नजर डालें, तो साफ होता है कि वर्ष 1983 में अनुसूचित जनजातियों कें 39.5 प्रतिशत पुरुष स्कूल गये थे, जबकि 1993–94 में यह संख्या बढ़कर 57 प्रतिशत हो गई 1993–94 में अनुसूचित जनजाति के 64.3 प्रतिशत लड़के स्कूल जा रहे थे, जबकि 1983 में यह संख्या महज 48.9 प्रतिशत ही थी। सामान्य वर्ग के आंकड़ो पर नजर डाले तो 1983 में स्कूल जाने वाले बच्चों का प्रतिशत 59.2 था और 1993–94 में यह आंकड़ा 74.9 प्रतिशत हो गया। ऐसे में साफ हैं कि सामान्य वर्ग की तुलना में अनुसूचित जाति व जनजाति के कई बच्चें स्कूल तक नही पहुंच पाते। ऐसे में उनके लिए कॉलेज में आरक्षण का कोई विशेष लाभ नही दिखाई देता है। पिछले 60 वर्षो में आरक्षण का मुद्दा चुनाव में वोटो की ओछी राजनीति से जुड़ गया हैं। कोई भी सरकार चाहें कितने ही बहुमत के आधार पर बनी हो, इस प्रश्न पर नये सिरे से विचार करने को ही तैयार नही हैं। आज विचार करने योग्य प्रश्न यह हैं कि आरक्षण जातिय आधार पर किया जाये या आर्थिक आधार पर? क्या आरक्षण की कोई समय सीमा भी होगी या नही? क्या आरक्षण से प्राप्त सुविधाओं का दुरूपयोग तो नही हो रहा हैं? जिन परिवारों ने आरक्षण का लाभ उठाया और जिनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति में बहुत बदलाव आया, वे भी निरंतर आरक्षण का लाभ उठाते रहे तो आम लोगों में आक्रोश पैदा होना स्वाभाविक हैं। सरकारी सेवाओं और शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश में आरक्षण के बाद पदोन्नतियों[3] और भावी शिक्षा के मामले में भी आरक्षण की व्यवस्था किसी भी तरह से उचित नही मानी जा सकती और इससे जाति वैमनस्य बढ़ेगा।

आरक्षण देने के पीछे मूल भावना का दुरूपयोग यदि राजनीतिक दलों द्वारा राजनीतिक लाभ के लिए किया जा रहा है, तब इस विषय पर गंभीर चिंतन की आवश्यकता हैं। कारण यह है कि इस प्रव त्ति से समाज में आरक्षित एवं अनारक्षित दो वर्ग बनते जा रहें हैं। जिनमें मनोवैज्ञानिक आधार पर परस्पर वैमनस्यता धीरे–धीरे बढ़ती जा रही है जो आने वाले समय में एक संघर्ष को जन्म दे सकती है। संविधान निर्माता भी इस दुश्परिणाम की कल्पना कर सके थे इसलिए उन्होंने इसे एक अल्प समय के लिए ही रखना उचित समझा सदैव के लिए नही। मेरा मानना है कि यदि आरक्षण ही सामाजिक असमानता को दूर कर सकंता होता तो आज 60 वर्षो में सबको सामाजिक न्याय मिल जाना चाहिये था, परंतु यह नही हुआ अर्थात इस व्यवस्था में कही न कही कोई कमी अवश्य है। आवश्यकता इस बात की हैं कि आरक्षण के सभी प्रश्नों पर ओछी और घटिया दलीय राजनीति ओर चुनावी राजनीति से ऊपर उठकर विचार किया जायें और इस संबंध में राष्ट्रीय सहमति पर आधारित नीति बनायी जायें। ऐसा हो पायेगा, आज की स्थिति को देखते हुए इसमें मुझे निश्चित रूप से संदेह होता हैं।

संदर्भ

1. प्रतियोगिता क्रॉनिकल, नवम्बर 2007, पृ. भठ–9।
2. इंडिया टुडे, 15 नवम्बर 1994, पृ. भठ–43।
3. पदोन्नति के रोस्टर प्रणाली के खिलाफ अन्य वर्गो के अधिकारियों में जबरदस्त प्रतिक्रिया पायी जाती है। यह संविधान द्वारा समानता के अधिकार के विरूद्ध है अनुच्छेद 14 से 18 में कहा गया है कि जाति, धर्म, लिंग के आधार पर नागरिकों में भेद नहीं किया जाना चाहिए। अतः यदि इन वर्गो को आरक्षण किया जाता है तो यह संविधान की समानता के अधिकार का उल्लंघन है।
4. प्रो. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, "सामयिक निबंध", उपकार प्रकाशन आगरा
5. परीक्षा मंथन 2007।
6. समाचार पत्र–अमर उजाला, बरेली संस्करण।
7. मनोज कुमार सिंह, "नयी पंचायती राज्य व्यवस्था एवं महिलायें" शोधग्रन्थ, एम.जे.पी. रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली (उ.प्र.)।
8. बी.एल.फड़िया, "भारतीय शासन एवं राजनीति" साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
9. पुखराज जैन, "राजनीति विज्ञान" साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
10. रजत अय्यर, "सामूहिक परिचर्चा" अरिहन्त पब्लिकेशन मेरठ।